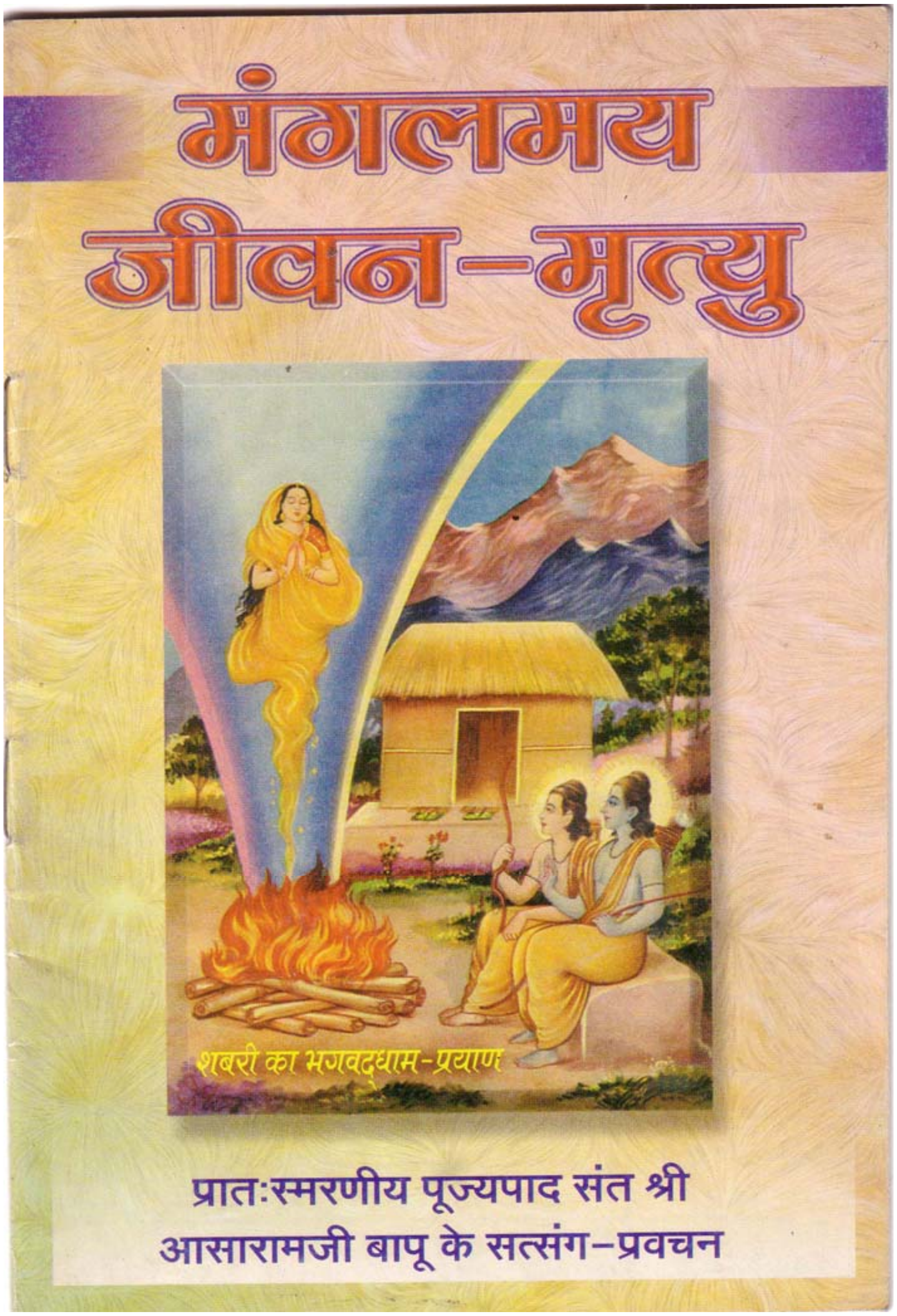
मंगलमय
जीवन-मृत्यु
शबरी का भगवद्धाम-प्रयाण
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन

अनुक्रम ...

मंगलमय जीवन-मृत्यु

"एक बार फकीरी मौत में डूबकर बाहर आ जाओ.....फिर देखो, संसार का कौन-सा भय तुम्हें भयभीत कर सकता है ? तुम शाहों के शाह हो।"

पूज्यश्री

अनुक्रम

निवेदन

मृत्यु एक अनिवार्य घटना है जिससे कोई बच नहीं सकता। सारी जीवनसृष्टि भयभीत है। इस भय से मुक्त होने का कोई मार्ग है? प्राचीन काल से ही पल्लवित पुष्पित हुई भारतीय अध्यात्म-विद्या में इसका ठोस उपाय है। इस अनुपम विद्या की झाँकी पाकर विदेशों के विश्वविख्यात तत्त्वचिंतक बोल उठेः

"अगर सुखमय मृत्यु प्राप्त करने की योग्यता संपादन करना तत्त्वचिन्तन का उद्देश्य हो तो वेदान्त जैसा दूसरा कोई साधन नहीं है।"

प्रो. मेक्सम्यूलर

"उपनिषदों के अभ्यास जैसा कल्याण करने वाला दूसरा कोई भी अभ्यास सारे विश्व में नहीं है। मेरे जीवन का यह आश्वासन है और मेरे मृत्युकाल में भी मुझे इसी का आश्वासन रहेगा।"

शोपनहोर

"यूरोप का उत्तमोत्तम तत्त्वज्ञान, ग्रीक तत्त्वज्ञों का चैतन्यवाद भी आर्यावर्त के ब्रह्मवाद की तुलना में मध्याह्न के पूर्ण प्रकाशवान सूर्य के आगे एक चिनगारी जैसा लगता है।

फ्रेडरीक श्लेगल

विदेशी विद्वान तो भारतीय शास्त्रों को केवल पढ़कर ही दंग रह गये थे जबकि अमदावाद, सूरत, मुंबई, रतलाम, इन्दौर, भोपाल के आश्रमों में प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के पावन सान्निध्य में तो इस ज्ञान की पावन गंगा निरन्तर बह रही है। हजारों साधक इस ज्ञान की झाँकी पाकर धन्य हो रहे हैं। अपने मंगलमय जीवन-मृत्यु के बारे में रहस्यमय सुखानुभूतियाँ पा रहे हैं।

अमदावाद में 'मंगलमय जीवन-मृत्यु' विषयक सत्संग प्रवचन में पूज्यश्री ने अपने अनुभवसिद्ध वचनों द्वारा बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन किया है। भय से आक्रान्त मानव समुदाय को निर्भयता का यह परम संदेश है। उनका यह सत्संग-प्रवचन अपने निर्भय एवं लोक कल्याण में रत जीवन का मूर्त रूप है।

इस छोटी सी पुस्तिका में प्रस्तुत पूज्यश्री का अमृत-प्रसाद पाकर आप भी जीवन-मृत्यु की समस्या सुलझाकर..... अपने भीतर निरन्तर गूँजते हुए शाश्वत जीवन का सुर सुनकर परम निर्भय हो जाओ। जीवन और मृत्यु को मंगलमय बना दो।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

अनुक्रम

मंगलमय जीवन-मृत्यु 5
मृत्यु के प्रकार 5
मृत्यु भी जीवन के समान आवश्यक 6
सिकन्दर ने अमृत क्यों नहीं पिया? 7
बिना मृत्यु को जाने जीवन जीवन नहीं 8
मृत्यु किसकी होती है ? 9
भगवान श्रीराम और तारा 10
मृत्युः केवल वस्त्र परिवर्तन 10
फकीरी मौतः आनन्दमय जीवन का द्वारः 11
यमराज और नचिकेताः 13
सच्चे संत मृत्यु का रहस्य समझाते हैं 14
मृत्युः एक विश्रान्ति-स्थानः 15
वासना की मृत्यु के बाद परम विश्रान्ति 16
धृतराष्ट्र का शोकः 16
घाटवाले बाबा का एक प्रसंग 17
फकीरी मौत ही असली जीवन 18
फकीरी मौत क्या है? 18
सुकरात का अनुभव 19
आध्यात्मविद्याः भारत की विशेषताः 20
तीन प्रकार के लोगः 20
ज्ञान को आयु से कोई निस्बत नहीं 21
योगसामर्थ्यः एक प्रत्यक्ष उदाहरण 22
योग भी साधना का आखिरी शिखर नहीं 23
गुणातीत संत ही परम निर्भयः 23
संतों का सन्देशः 24
चिंतन पराग 32

मंगलमय जीवन-मृत्यु

आज हम जीवन और मृत्यु के बारे में विचार करेंगे। बात तो बहुत छोटी है, मगर बड़ी अटपटी है। झटपट समझ में नहीं आती। अगर एक बार समझ में आ जाये तो जीवन की सब खटपट मिट जाये।

इस रहस्य को न समझ सकने के कारण हम अपने को सीमित देशकाल के भीतर एक सामान्य श्रोता के रूप में यहाँ उपस्थित मान रहे हैं, मगर यदि यह रहस्य हमें ठीक से समझ में आ जाय तो तुरन्त यह ख्याल आयेगा किः "मैं अनन्त ब्रह्माण्डों में व्याप्त होकर सभी क्रियाएँ कर रहा हूँ। मेरे अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं, तो फिर जीवन किसका और मौत किसकी?

मृत्यु के प्रकार

मृत्यु पर भिन्न-भिन्न दृष्टि से विचार कर सकते हैं।

पौराणिक दृष्टि से अपने इष्ट की स्मृति जीवन है और इष्ट की विस्मृति मृत्यु है।

व्यावहारिक दृष्टि से अपनी इच्छा के अनुकूल घटना घटे यह जीवन है और इच्छा के प्रतिकूल घटना घटे यह मृत्यु है। ऐसी मृत्यु तो दिन में अनेक बार आती है।

लौकिक दृष्टि से पद प्रतिष्ठा मिलना, वाह-वाही होना जीवन है और बदनामी होना मौत कहा जा सकता है।

जिसे साधारण लोग जीवन और मौत कहते हैं उस दृष्टि से देखें तो पंचभूतों से बने स्थूल शरीर का सूक्ष्म शरीर (प्राणमय शरीर) से संयोग जीवन है और वियोग मौत है।

वास्तव में न तो कोई जीता है न कोई मरता है, केवल प्रकृति में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन में अपनी स्वीकृति तो जीवन लगता है और इस परिवर्तन में बिना इच्छा के खिंचा जाना, घसीटा जाना, जबरन उसको स्वीकार करना पड़े यह मौत जैसा लगता है।

वास्तव में मौत जैसा कुछ नहीं है।

जगत में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है वह सब परिवर्तनशील है। दूसरे शब्दों में, वह सब काल के गाल में समाता जा रहा है। चहचहाट करते हुए पक्षी, भागदौड़ करते हुए पशु, लहलहाते हुए पेड़-पौधे, वनस्पति, प्रकृति में हलचल मचाकर मस्तिष्क को चकरा देने वाले

आविष्कार करते हुए मनुष्य सभी एक दिन मर जायेंगे। कई मर गये, कइयों को रोज मरते हुए हम अपने चारों ओर देख ही रहे हैं और भविष्य में कई पैदा हो-होकर मर जायेंगे।

कोई आज गया कोई कल गया कोई जावनहार तैयार खड़ा।
नहीं कायम कोई मुकाम यहाँ चिरकाल से ये ही रिवाज रहा।।

दादा गये, पिता गये, पड़ोसी गये, रिश्तेदार गये, मित्र गये और एक दिन हम भी चले जाएँगे इस तथा कथित मौत के मुँह में। यह सब देखते हुए, जानते हुए, समझते हुए भी 50 वर्षवाला 60, 60 वर्षवाला 70, 70 वर्ष वाला 80 और 90 वाला 100 वर्ष उम्र देखने की इच्छा करता है। 100 वर्ष वाला भी मरना नहीं चाहता। मौत किसी को पसन्द नहीं है।

मैंनें सुना है कि अमेरिका में लगभग एक हजार ऐसी लाशें सुरक्षित पड़ी हैं इस आशा में कि आगे आने वाले 20 वर्षों में विज्ञान इतनी प्रगति कर लेगा कि इन लाशों को जीवनदान दे सके। हर लाश पर 10000 रुपये दैनिक खर्च हो रहा है। बीस साल तक चले उतना धन ये मरने वाले लोग जमा कराके गये हैं।

कोई मरना नहीं चाहता।

कब्र में जिसके पैर लटक रहे हैं वह बूढा भी मरना नहीं चाहता। औषधियाँ खा-खाकर जीर्ण-शीर्ण हुआ रोगी मरणशय्या पर पड़ा अंतिम श्वासें ले रहा है, डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है, वह भी मरना नहीं चाहता। लाशें भी जिन्दा होना चाहती हैं। प्रकृति का यह मृत्यु रूपी परिवर्तन किसी को पसन्द नहीं। यद्यपि यह सब जानते हैं।

जो आया है सो जाएगा राजा रंक फकीर।

यह मान भी लिया जाये कि 20 वर्ष में विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा और लाशों को फिर से जीवित भी कर देगा, फिर भी वे कब तक टिकी रहेंगी? अंत में जरा-जीर्ण होंगी ही। उन लाशों को तो बीस वर्ष भी हो गये। अभी तक विज्ञानी उन्हें जीवित नहीं कर पाये। मानो कर भी लें तो ये कब तक टिकेंगी ?

मृत्यु भी जीवन के समान आवश्यक

बगीचे में वही के वही पेड़-पौधे, फूल-पत्ते ज्यों के त्यों बने रहें, उनकी काट-छाँट न की जाय, नये न लगायें जाएँ, उनको सँवारा न जाय तो बगीचा बगीचा नहीं रहेगा, जंगल बन जायेगा। बगीचे में काट-छाँट होती रहे, नये पौधे लगते रहें, पुराने, सड़े-गले, पुष्पहीन, ठूँठ, बिनजरूरी पौधे हटा दिये जायें और नये, सुगन्धित, नवजीवन और नवचेतना से ओतप्रोत पौधे लगाये जाएँ यह जरूरी है।

अनुक्रम

सिकन्दर ने अमृत क्यों नहीं पिया?

सम्राट सिकंदर, जिसे पीकर अमर हो जाए, कभी मरना न पड़े ऐसे अमृत जल की खोज में था। नक्शों के सहारे विजय करता हुआ वह उस गुफा में पहुँच भी गया जिसके अन्दर अमृतजल का झरना था। गुफा के बाहर ही उसने अपने सभी सैनिकों को रोक दिया और स्वयं अकेला बड़े उत्साह व प्रसन्नता से आहिस्ते-आहिस्ते चौकन्ना होकर कदम बढ़ाने लगा। आज उसके जीवन की सबसे बड़ी ख्वाहिश पूरी होने जा रही थी। उसका हृदय उछल रहा था। थोड़ी ही दूर अपने सामने पैरों के पास ही उसने देखाः चाँदी सा श्वेत अमृतजल धीमी-धीमी कल-कल छल-छल आवाज करता बह रहा है। उसका हृदय आनन्द से खिल उठा। अब वह अपने को न रोक सका। वह घुटनों के बल नीचे झुका। अपने दोनों हाथ पानी में डुबोए।

आहा ! कैसा शीतल स्पर्श! उसकी सारी थकान उतर गई। दोनों हाथों की अंजली में उसने वह जल भरा। अंजली को धीरे-धीरे मुँह तक लाया। हृदय की धड़कन बढ़ी। होंठ सुधापान करने को लालायित हो उठे। बस, जल ओंठों तक पहुँच ही गया था और वह पी ही लेता कि इतने में-

"खबरदार....!"

उस निर्जन गुफा में किसी की आवाज गूँज उठी। चौंक कर सिकन्दर ने सिर ऊपर उठाया। देखा तो एक कौआ वहाँ बैठा है।

"खबरदार सिकंदर ! रुक जाओ, जल्दी न करो। जो भूल मैंने की वह तुम मत करो...। मुझे कोई साधारण कौआ मत समझना। मैं कौओं का सम्राट हूँ। मैं भी तुम्हारी तरह बहुत परिश्रम में इस अमृत की खोज करते-करते यहाँ तक पहुँचा हूँ और मैंने यह जल पी लिया है। परन्तु इसे पीकर अब मुसीबत में पड़ गया हूँ।"

ऐसी गम्भीर घड़ी में यह विघ्न सिकंदर को अच्छा नहीं लगा, फिर भी धीरज से वह उसकी बात सुनने लगा। कौआ बोलाः

"तुमको जल पीना हो तो अवश्य पियो सिकंदर, लेकिन मेरी बात पूरी सुन लो। यह जल पीकर मैं अमर हो गया हूँ। जो कुछ जीवन में करने की इच्छा थी वह सब मैं कर चुका हूँ। जितना घूमना था घूम लिया, सुनना था सुन लिया, गाना था गा लिया, खाना था खा लिया, जो भी मौज करने की इच्छा थी सब कर लिया। अब करने के लिए कुछ बचा ही नहीं। अब यह जीवन मेरे लिये भार बन गया है। मैं अब मरना चाहता हूँ परन्तु मर नहीं सकता। मरने के लिए पानी में कूदा, परन्तु पानी ने मुझे डुबाया नहीं। पहाड़ों पर से कूदा, फिर भी मरा नहीं। आग की ज्वालाओं में कूदकर देखा, उसने भी मुझे जलाया नहीं। तलवार की धार से मैंने गर्दन घिसी, परन्तु धार खराब हो गई, गर्दन न कटी। यह सब इस अमृतजल के कारण।

सोचा था कि अमर होकर सुखी होऊँगा। परन्तु अब पता चला कि मैंने मुसीबत मोल ले ली है। तुमको यह जल पीना हो तो अवश्य पियो, मैं मना नहीं करता परन्तु मेरी तुमसे विनती है कि यहाँ से जाने के बाद मरने की कोई विधि का पता लगे तो मुझे अवश्य समाचार देना।"

थोड़ी देर के लिए गुफा में नीरव शांति छा गई। सिकंदर के हाथ की उँगलियाँ शिथिल हो गईं। उनके बीच में से सारा अमृतजल गिर कर पुनः झरने में समा गया। दूसरी बार उसने झरने के जल में हाथ डालने की हिम्मत नहीं की। मन ही मन विचार करते हुए वह उठ खड़ा हुआ और पीछे मुड़कर गुफा के द्वार की ओर चल पड़ा आहिस्ते-आहिस्ते.. बिना अमृतजल के पिये।

यह घटना सच हो या झूठ, उससे कोई सरोकार नहीं, परन्तु इसमें एक तथ्य छुपा हुआ है कि जितना जीवन जरूरी है उतनी ही मौत भी जरूरी है। परिवर्तन होना ही चाहिए।

अनुक्रम

बिना मृत्यु को जाने जीवन जीवन नहीं

जिस जीवन के लिए अपनी लाश की सुरक्षा हेतु करोड़ों रुपयों की वसीयत करके लोग चले गये, जिस जीवन को टिकाए रखने के लिए हम लोग भी अपार धन-सम्पत्ति इकट्ठी करने में लगे हुए हैं, दूसरों को दुःखी करके भी जीवन के ऐश–आराम के साधन संग्रह करने में हम लगे हुए हैं, वह जीवन टिक जाने के पश्चात भी, अमर हो जाने के बाद भी क्या हमको आनन्द दे सकेगा? क्या हम सुखी हो सकेंगे?... यह जरा विचार करने योग्य है। मौत से मनुष्य डरता है परन्तु ऐसा जीवन भी कोई जीवन है जिसमें सदैव मौत का भय बना रहे ? जहाँ पग-पग मृत्यु

का भय हमें कम्पित करता रहे? ऐसा नीरस जीवन, भयपूर्ण जीवन मौत से भी बदतर जीवन है। ऐसा जीवन जीने में कोई सार नहीं। यह जीवन जीवन नहीं है।

यदि जीवन ही जीना है, यदि रसमय जीवन जीना है, यदि जीवन का स्वाद लेते हुए जीवन को जीना है तो मौत को आमंत्रित करो, मौत को बुलाओ और होशपूर्वक मौत का अनुभव करो। जो संत मौत का अनुभव कर चुके हैं उनका संग करके मौत की पोल को जान लो, फिर तो आप भी मस्त होकर उनकी तरह कह उठेंगेः

जा मरने ते जग डरे, मोरे मन आनन्द ।

अनुक्रम

मृत्यु किसकी होती है ?

अभी तो जिसे तुम जीवन कहते हो वह जीवन नहीं और जिसे तुम मौत कहते हो वह मौत नहीं है। केवल प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। प्रकृति में जो रहा है वह सब परिवर्तन है। जो पैदा होता दिख रहा है वही नष्ट होता नजर आता है। जिसका सर्जन होता दिखता है वही विसर्जन की ओर जाता नजर आता है। पेड़-पौधे हों या खाइयाँ हो, सागर हो या मरुस्थल हो, सब परिवर्तन रूपी सरिता में बहे जा रहे हैं। जहाँ नगर थे वहाँ वीरान हो गये, जहाँ बस्तियाँ थीं वहाँ आज उल्लू बोल रहे हैं और जहाँ उल्लू बोल रहे थे वहाँ बस्तियाँ खड़ी हैं, जहाँ मरुस्थल थे वहाँ आज महासागर हिलोरें ले रहे हैं और जहाँ महासागर थे वहाँ मरुस्थर खड़े हैं। बड़े-बड़े खड्डों की जगह पहाड़ खड़े हो गये और जहाँ पहाड़ थे वहाँ आज घाटियाँ, खाइयाँ बनी हुई हैं। जहाँ बड़े-बड़े वन थे वह भूमि बंजर और पथरीली हो गई और जो बंजर थी, पथरीली थी वहाँ आज वन और बाग-बगीचों के रूप में हरियाली फैली हुई है।

चाँद सफर में, सितारे सफर में ।
हवाएँ सफर में, दरिया के किनारे सफर में ।
अरे शायर ! वहाँ की हर चीज सफर में ।
....तो आप बेसफर कैसे रह सकते हैं ?

आप जिस शरीर को 'मैं' मानते हैं वह शरीर भी परिवर्तन की धारा में बह रहा है। प्रतिदिन शरीर के पुराने कोष नष्ट हो रहे हैं और उनकी जगह नये कोष बनते जा रहे हैं। सात वर्ष में तो पूरा शरीर ही बदल जाता है। ऐसा वैज्ञानिक भी कहते हैं। इस स्थूल शरीर से सूक्ष्म

शरीर का वियोग होता है अर्थात् सूक्ष्म शरीर देहरूपी वस्त्र बदलता है इसको लोग मौत कहते हैं और शोक में फूट-फूट कर रोते हैं।

अनुक्रम

भगवान श्रीराम और तारा

भगवान राम ने जब बाली का वध किया तो बाली की पत्नी राम के पास आई और अपने पति के वियोग में फूट-फूट कर रोने लगी। राम ने उसको धीरज बँधाते हुए कहाः

क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा ।
सो तनु तव आगे सोहा, जीव नित्य तू कहाँ लगि रोवा ।।

"हे तारा ! तू किसके लिए विलाप कर रही है? शरीर के लिए या जीव के लिए? पंचमहाभूतों द्वारा रचित शरीर के लिए यदि तू रोती है तो यह तेरे सामने ही पड़ा है और यदि जीव के लिए रोती है तो जीव नित्य है, वह मरता नहीं।"

मृत्युः केवल वस्त्र परिवर्तन

यदि वास्तव में मौत होती तो हजारों-हजारों बार होने वाली तुम्हारी मौत के साथ तुम भी मर चुके होते, आज तुम इस शरीर में नहीं होते। यह शरीर तो मात्र वस्त्र है और आज तक आपने हजारों वस्त्र बदले हैं। अपना ईश्वर कंगाल नहीं है, दिवालिया नहीं है कि जिसके पास दो चार ही वस्त्र हों। उसके पास तो अपने बालकों के लिए चौरासी-चौरासी लाख वस्त्र हैं। कभी चूहे का तो कभी बिल्ली का, कभी देव का तो कभी गंधर्व का, न जाने कितने-कितने वेश आज तक हम बदलते आये हैं। वस्त्र बदलने में भय कैसा?

यही बात भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कही हैः

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

'हे अर्जुन ! तू यदि शरीरों के वियोग का शोक करता है तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।"

(गीताः 2.22)

बालक की चड्डी (नेकर) फटने पर उसकी माँ उसको निकाल कर नई पहनाती तो बालक रोता है, चिल्लाता है। वही बालक बड़ा होता है, पहले की चड्डियाँ छोटी पड़ जाती हैं, उन्हें छोड़ता है, बड़ी पहनता है, फिर वह भी छोड़कर पैन्ट, पाजामा या धोती आदि पहनता है। ऐसे ही परमात्मा की संतान भी ज्यों-ज्यों बड़ी होती है विकसित होती है त्यों-त्यों उसे पहले से अधिक योग्य, देदीप्यमान नये शरीर मिलते हैं। जीव-जंतुओं से विकसित होते-होते बन्दर, गाय और आखिर मनुष्य देह मिलती है। मनुष्य दिव्य कर्म करे, सत्त्वगुण-प्रधान बने तो देव, गंधर्व की योनि मिलती है। उसका स्वभाव रजस प्रधान हो तो वह फिर मनुष्य बनता है और यदि तामसी स्वभाव रखता है तो पुनः हल्की योनियों में जाता है। उस मानव को यदि ईश्वर भक्ति के साथ कोई समर्थ सदगुरु मिल जाये, उसे आत्मध्यान, आत्मज्ञान की भूख जगे, वह गुरुकृपा पचा ले तो वही मनुष्य, चौरासी के चक्र में घूमने वाला जीव अपने शिवस्वभाव को जानकर तीनों गुणों से पार हो जाये, परमात्मा में मिल जाये।

वस्त्र परिवर्तन से भय कैसा? वस्त्र बदलने वाला तो कभी भी मरता नहीं, वह अमर है और परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है, तो फिर मौत है ही कहाँ? यही बात समझाते हुए गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं अर्जुन से कि तुम्हे भय किस बात का है?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

'यदि युद्ध में शरीर छूट गया तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे और यदि जीत गये तो पृथ्वी का राज्य भोगेगे।'

(सभी श्रोतागण तन्मयता से जीवन मृत्यु पर मीमांसा सुन रहे हैं। स्वामी जी कुछ क्षण रुककर सभी पर एक रहस्यमय दृष्टि फेंकते हैं। वातावरण में थोड़ी गम्भीरता छाई हुई जानकर प्रश्न करते हैं।)

फकीरी मौतः आनन्दमय जीवन का द्वारः

आप लोग उदास तो नहीं हो रहे हैं न? आपको मौत का भय तो नहीं लग रहा है न? अभी केवल जीवन पर बात ही चल रही है, किसी की मौत नहीं आ रही है....।

(यह सुनकर सभी खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। स्वामी जी फकीर मस्ती में आगे कहते हैं)।

अरे मौत तो इतनी प्यारी है कि उसे यदि आमंत्रित किया जाये तो आनन्दमय जीवन के द्वार खोल देती है।

एक जवान साधु था। घूमते-घूमते वह नेपाल के एक पहाड़ की तलहटी में जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा, एक वृद्ध संत एक शिला पर बैठे हैं। शाम का समय है। सूरज छिपने की तैयारी में है। उन संत ने उस जवान साधु को तो देखा तो बोलेः

"मेरे पैरों में इतनी ताकत नहीं कि अभी मैं ऊपर पहाड़ पर चढ़कर अपनी गुफा तक पहुँच सकूँ। बेटा, तुम मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर गुफा तक पहुँचा दो।"

युवा साधु भी अलमस्त था। उसने संत को अपने कंधे पर बिठा लिया और चल पड़ा उनकी गुफा की ओर। चढ़ाई बड़ी कठिन थी, परन्तु वह भी जवान था। चढ़ाई चढ़ता रहा। काफी ऊपर चढ़ चुकने पर उसने संत से पूछाः

"गुफा अभी कितनी दूर है?"

"बस, अब थोड़ी दूर है।"

चलते-चलते काफी समय हो गया। साधु पूछता रहा और वे संत कहत रहेः "बस अब थोड़ी ही दूर है।" मामा का घर जितना दूर? दिया दिखे उतना दूर.... ऐसा करते-करते रात को ग्यारह बजे के करीब गुफा पर पहुँचे। साधु ने वृद्ध संत को कंधे से नीचे उतारा और बोलाः

"और कोई सेवा?"

संत उसकी सेवा से बड़े प्रसन्न थे। बोलेः

"बेटा ! तुमने बड़ी अच्छी सेवा की है। बोल, अब तुझे क्या पुरस्कार दूँ? .....वह देख, सामने तीन-चार भरे हुए बोरे रखे हैं। उसमें से जितना उठा सको उतना उठा ले जाओ।"

युवा साधु ने जाकर बोरों को छूकर देखा, अनुमान लगाया, शायद रद्दी कागजों से भरे हुए हैं। फिर ध्यान से देखा को अनुमान गलत निकला। वे बोरे नेपाली नोटों से भरे हुए थे। उसने अनमने मन से उनको देखा और उल्टे पैरों लौट पड़ा संत की ओर। संत ने पूछाः

"क्यों माल पसन्द नहीं आया?"

वृद्ध संत पहुँचे हुए योगी थे। अपने योगबल द्वारा उन्होंने नोटों के बंडलों से भरे बोरे उत्पन्न कर दिये थे। उनको ऐसी आशा थी कि वह युवा साधु अपनी सेवा के बदले इस पुरस्कार से खुश हो जायगा। परन्तु वह युवा साधु बोलाः

"ऐसी सब चीजें तो मैं पहले ही छोड़ आया हूँ। इनसे क्या जीवन की रक्षा होगी? इनसे क्या जीवन का रहस्य समझ में आएगा? इनसे क्या मौत जानी जा सकेगी?..... क्या मैं इन्ही चीजों के लिए घर बार छोड़कर दर-दर भटक रहा हूँ? जंगलों और पहाड़ों को छान रहा हूँ? ये सब तो नश्वर हैं।....और अगर संतों के पास भी नश्वर मिलेगा तो फिर शाश्वत कहाँ से मिलेगा।"

अनुक्रम

यमराज और नचिकेताः

नचिकेता भी यमराज के सम्मुख ऐसी ही माँग पेश करता है। कठोपनिषद में नचिकेता की कथा आती है। नचिकेता कहता है यमराज सेः "हे यमराज ! कोई कहता है मृत्यु के बाद मनुष्य रहता है और कोई कहता है नहीं रहता है। इसमें बहुत संदेह है। इसलिए मुझे मृत्यु का रहस्य समझाओ ताकि सत्य क्या है, यह मैं जान सकूँ।" परन्तु यमराज नचिकेता की जिज्ञासा को परखने के लिए पहले भौतिक भोग और वैभव का लोभ देते हुए कहते हैं-

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदोयावदिच्छसि ।।

हे नचिकेता ! तू सौ वर्ष की आयुष्य वाले पुत्र-पौत्र, बहुत से पशु, हाथी-घोड़े, सोना माँग ले, पृथ्वी का विशाल राज्य माँग ले तथा स्वयं भी जितने वर्ष इच्छा हो जीवित रह।"

(वल्लीः 1.23)

इतना ही नहीं, यमराज आगे कहते हैं-

"मनुष्यलोक में जो भोग दुर्लभ हैं उन सबको स्वच्छन्दतापूर्वक तू माँग ले। यहाँ जो रथ और बाजों सहित सुन्दर रमणियाँ हैं, वे मनुष्यों के लिए दुर्लभ हैं। ऐसी कामिनयों को तू ले जा। इनसे अपनी सेवा करा, परन्तु हे नचिकेता ! तू मरण सम्बन्धी प्रश्न मत पूछ।"

फिर भी नचिकेता इन प्रलोभनों में नहीं फँसता है और कहता हैः

"ये सब भोग सदैव रहने वाले नहीं हैं और इनको भोगने से तेज, बल और आयुष्य क्षीण हो जाते हैं। मुझे ये भोग नहीं चाहिए। मुझे तो मृत्यु का रहस्त समझाओ।"

अनुक्रम

सच्चे संत मृत्यु का रहस्य समझाते हैं

ठीक इसी प्रकार वह युवा साधु उन वृद्ध संत से कहता हैः "मुझे ये नोटों के बंडल नहीं चाहिए। आप यदि मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे मौत दीजिए। मैं जानना चाहता हूँ कि मौत क्या है? मैंने सुना है कि सच्चे संत मरना सिखाते हैं। मैं उस मौत का अनुभव करना चाहता हूँ।"

वस्तुतः संत मरना सिखाते हैं इसीलिए तो लोग रोते हुए बच्चों को चुप कराने के लिए कहते हैं - 'रो मत, चुप हो जा। नहीं तो वह देख, बाबा आया है न, वह पकड़कर ले जायेगा।' भले ही लोग अज्ञानतावश बाबाओं अथवा संतों से बच्चों को डराते हुए कहते हैं कि वे ले जायेंगे, परन्तु जिनको सच्चे संत ले जाते हैं अथवा जो उनका हाथ पकड़ लेते हैं, वे तर जाते हैं। सच्चे संत उनको सब भयों से मुक्त कर देते हैं और उनको ऐसे पद पर बिठा देते हैं कि जिसके आगे संसार के सारे भोग-वैभव, धन-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र, यश-प्रतिष्ठा, सब तुच्छ भासित होते हैं। परन्तु ऐसे सच्चे संत मिलने दुर्लभ हैं और दृढ़ता से उनका हाथ पकड़ने वाले भी दुर्लभ हैं। जिन्होंने ऐसे संतों का हाथ पकड़ा है वे निहाल हो गये।

उस युवा साधु ने भी ऐसे ही संत का हाथ पकड़ा था। मौत को जानने की उसकी प्रबल जिज्ञासा को देखकर वे वृद्ध संत बोल उठेः "अरे, यह क्या माँगता है? यह भी कोई माँगने की चीज है?" ऐसा कहकर उन्होंने युवा साधु को थोड़ी देर इधर-उधर की बातों में लगाया और मौका देखकर उसको एक तमाचा मार दिया। युवक की आँखों के सामने जैसे बिजली चमक उठी हो ऐसा अनुभव हुआ और दूसरे ही क्षण उसका स्थूल शरीर भूमि पर लेट गया। उसका सूक्ष्म शरीर देह से अलग होकर लोक-लोकान्तर की यात्रा में निकल पड़ा। लोग जिसको मृत्यु कहते हैं ऐसी घटना घट गई।

प्रातःकाल हुआ। रात भर आनन्दमय मृत्यु के स्वाद मे डूबे हुए उस युवा साधु के स्थूल शरीर को हिलाकर वृद्ध संत ने कहाः

"बेटा उठ ! सुबह हो गई है। ऐसे कब तक सोता रहेगा?"

युवा साधु आँख मलता हुआ प्रसन्नवदन उठ बैठा। जिसको मृत्यु कहते हैं उस मृत्यु को उसने देख लिया। अहा ! कैसा अदभुत अनुभव ! उसका हृदय कृतज्ञता से भर उठा। वह उठकर फकीर के चरणों में गिर पड़ा।

लोग कहते हैं कि मरना दुःखप्रद है और इसीलिए मौत से डरते हैं। जिनको संसार में मोह है उनके लिए मौत भयप्रद है, परन्तु संतो के लिए, मोह रहित आत्माओं के लिए ऐसा नहीं है।

अनुक्रम

मृत्युः एक विश्रान्ति-स्थानः

मौत तो एक पड़ाव है, एक विश्रान्ति-स्थान है। उससे भय कैसा? यह तो प्रकृति की एक व्यवस्था है। यह एक स्थानान्तर मात्र है। उदाहरणार्थ, जैसे मैं अभी यहाँ हूँ। यहाँ से आबू चला जाऊँ तो यहाँ मेरा अभाव हो गया, परन्तु आबू में मेरी उपस्थिति हो गई। आबू से हिमालय चला जाऊँ तो आबू में मेरा अभाव हो जायेगा और हिमालय में मेरी हाजिरी हो जायेगी। इस प्रकार मैं तो हूँ ही, मात्र स्थान का परिवर्तन हुआ।

तुम्हारी अवस्थाएँ बदलती हैं, तुम नहीं बदलते। पहले तुम सूक्ष्म रूप में थे। फिर बालक का रूप धारण किया। बाल्यावस्था छूट गई तो किशोर बन गये। किशोरावस्था छूट गई तो जवान बन गये। जवानी गई तो वृद्धावस्था आ गई। तुम नहीं बदले, परन्तु तुम्हारी अवस्थाएँ बदलती गईं।

हमारी भूल यह है कि अवस्थाएँ बदलने को हम अपना बदलना मान लेते हैं। वस्तुतः न तो हम जन्मते-मरते हैं और न ही हम बालक, किशोर, युवा और वृद्ध बनते हैं। ये सब हमारी देह के धर्म हैं और हम देह नहीं हैं। संतो का यह अनुभव है किः

मुझ में न तीनों देह हैं, तीनों अवस्थाएँ नहीं ।
मुझ में नहीं बालकपना, यौवन बुढ़ापा है नहीं ।।
जन्मूँ नहीं मरता नहीं, होता नहीं मैं बेश-कम ।
मैं ब्रह्म हूँ मै ब्रह्म हूँ, तिहूँ काल में हूँ एक सम ।।

मृत्यु नवीनता को जन्म देने में एक संधिस्थान है। यह एक विश्राम स्थल है। जिस प्रकार दिन भर के परिश्रम से थका मनुष्य रात्रि को मीठी नींद लेकर दूसरे दिन प्रातः नवीन स्फूर्ति लेकर जागता है उसी प्रकार यह जीव अपना जीर्ण-शीर्ण स्थूल शरीर छोड़कर आगे की यात्रा के लिए नया शरीर धारण करता है। पुराने शरीर के साथ लगे हुए टी.बी., दमा, कैन्सर जैसे भयंकर रोग, चिन्ताएँ आदि भी छूट जाते हैं।

वासना की मृत्यु के बाद परम विश्रान्ति

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग, जिसको मृत्यु कहा जाता है, वह विश्राम-स्थल तो है परन्तु पूर्ण विश्रांति उसमें भी नहीं है। यह फकीरी मौत नहीं है।

फकीरी मौत तो वह है जिसमें सारी वासनाएँ जड़ सहित भस्म हो जाएँ।

भीतर यदि सूक्ष्म वासना भी बची रही तो जीव फिर से नया शरीर धारण कर लेगा और फिर से सुख-दुःख की ठोकरें खाना चालू कर देगा। फिर से वहीः

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं ।
पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।।

अनुक्रम

धृतराष्ट्र का शोकः

कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन सहित जब सारे पुत्र मारे गये तो धृतराष्ट्र खूब दुःखी हुए और विदुर से कहने लगेः "कृष्ण और पांडवों ने मिलकर मेरे सब पुत्रों का संहार कर दिया है इसका दुःख मुझसे सहन नहीं होता। एक एक क्षण व्यतीत करना मुझे वर्षों जैसा लम्बा लग रहा है।"

विदुर धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं- "जो होना होता है वह होकर ही रहता है। आप व्यर्थ में शोक न करो। आत्मा अमर है। उसके लिए मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं है। इस शरीर को छोड़कर जो जाता है वह वापस नहीं आता, इस बात को समझकरः 'राम राखे तेम रहिये।' हे भाई ! शोक न करो।"

परन्तु धृतराष्ट्र का शोक कम नहीं हुआ। वह दृढ़तापूर्वक कहने लगाः "तुम कहते हो वह सब समझता हूँ, फिर भी मेरा दुःख कम नहीं होता। मुझे अपने पुत्रों के बिना चैन नहीं पड़ रहा है। पलभर को भी चित्त शांत नहीं रहता।"

अज्ञानी सोचता है कि जिस प्रकार मैं चाहता हूँ उसी प्रकार सब हो जाये तो मुझे सुख हो। यही मनुष्य का अज्ञान है।

शास्त्र और संतों का कितना ही उपदेश सुनने को मिल जाय तो भी वह अपनी मान्यताओं का मोह सरलता से छोड़ने को तैयार नहीं होता। विदुर का धर्मयुक्त उपदेश धृतराष्ट्र को सान्तवना नहीं दे सका। धृतराष्ट्र शास्त्रों से बिल्कुल अनभिज्ञ था ऐसी बात नहीं थी। फिर भी उसका शास्त्रज्ञान उसे पुत्रों के मोह से मुक्त नहीं कर सका।

अनुक्रम

घाटवाले बाबा का एक प्रसंग

हरिद्वार में घाटवाला बाबा के नाम से प्रसिद्ध एक महान संत रहते थे। बहुत सीधे-सादे और सरल। कमर में कंतान (टाट) लपेटे रहते थे, ऊपर से दिखने में भिखारी जैसे लगते मगर भीतर से सम्राट थे। उनके पास एक व्यक्ति आया और बोलाः "महाराज ! मुझे शांति चाहिए।"

महाराज ने पहले उसे ध्यान से देखा फिर कहाः "शांति चाहिए तो तुम गीता पढ़ो।"

यह सुनकर वह चौंककर बोलाः "गीता ! गीता तो मैं विद्यार्थियों को पढ़ाता हूँ। मैं कालेज में प्रोफेसर हूँ। गीता मेरा विषय है। गीता मैं कई बार पढ़ चुका हूँ। उस पर तो मेरा काबू है।"

महाराज बोलेः "यह ठीक है। अब तक तो लोगों को पढ़ाकर पैसों के लाभ के लिए गीता पढ़ी होगी। अब मन को नियंत्रित करके शांति लाभ के लिए पढ़ो।"

लोग शास्त्रों में से सूचनाएँ और जानकारियाँ इकट्ठी करके उसे ही ज्ञान मान लेते हैं। दूसरों को प्रभावित करने के लिए लोग शास्त्रों की बातें करते हैं, उपदेश देते हैं, परन्तु उन्हें अपने आपको कोई अनुभूति नहीं होती। मृत्यु के विषय में भी लोग विद्वतापूर्ण प्रवचन कर सकते हैं, मृत्यु से डरने वालों को आश्वासन और धैर्य दे सकते हैं परन्तु मौत जब उन्हीं के सम्मुख साक्षात् आकर खड़ी होती है तो उनकी रग-रग काँप उठती है, क्योंकि उनको फकीरी मौत का अनुभव नहीं।

कई लोग कहते हैं कि जीवन और मौत अपने हाथ में नहीं है, परन्तु यह उनके लिए ठीक है जिनको आध्यात्मिक रहस्य का पता नहीं, जो स्वयं को शरीर मानते हैं, दीन-हीन मानते हैं। परन्तु योगी जानते हैं कि जीवन और मृत्यु इन दोनों पर मनुष्य का अधिकार है। इस अधिकार को प्राप्त करने की तरकीब भी वे जानते हैं। कोई हिम्मतवान जानने को तत्पर हो तो वे उसे बता भी सकते हैं। वे तो खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि यदि रोते-कल्पते हुए मरना हो तो खूब भोग-भोगो। किसी की परवाह न करते हुए खूब खाओ, पियो और अमर्यादित विषय-सेवन करो। ऐसा जीवन आपको अपने आप मौत की ओर शीघ्रता से आगे बढ़ा देगा। परन्तु.....

यदि मौत पर विजय प्राप्त करनी हो, जीवन को सही तरीके से जीना हो तो योगियों के कहे अनुसार करो, प्राणायाम करो, ध्यान करो, योग करो, आत्मचिन्तन करो और ऐसा कोई योगी डॉक्टरों के सामने आकर हृदय की गति बन्द करके बता देता है तो वह बात भी लोगों को

बड़ी आश्चर्यजनक लगती है। लोगों के टोले के टोले उसको देखने के लिए उमड़ पड़ते हैं। परन्तु यह भी कोई योग की पराकाष्ठा नहीं है।

फकीरी मौत ही असली जीवन

इतिहास में ज्ञानेश्वर महाराज और योगी चाँगदेव का प्रसंग आता है, वह तो आप लोग जानते ही होंगे। चाँगदेव ने मृत्यु को चौदह बार धोखा दिया था। अर्थात् जब-जब मौत का समय आता तब-तब चाँगदेव योग की कला से अपने प्राण ऊपर चढ़ाकर मौत टाल दिया करते थे। ऐसा करते-करते चाँगदेव ने अपनी उम्र 1400 वर्ष तक बढ़ा दी, फिर भी उनको आत्मशान्ति नहीं मिली। फकीरी मौत ही आत्मशांति दे सकती है और इसीलिए चाँगदेव को आखिर में ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में समर्पित होना पड़ा।

अनुक्रम

फकीरी मौत क्या है?

फकीरी मौत ही असली जीवन है। फकीरी मौत अर्थात् अपने अहं की मृत्यु। अपने जीवभाव की मृत्यु। 'मैं देह हूँ.... मैं जीव हूँ....' इस परिच्छिन्न भाव की मृत्यु।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग यह कोई फकीरी मौत नहीं है। अगर वासना शेष हो तो सूक्ष्म शरीर बार-बार स्थूल शरीर धारण करके इस संसार में जन्म-मरण के दुःख पूर्ण चक्कर में भटकता रहता है।

जब तक फकीरी मौत नहीं हो तब तक चाँगदेव की तरह चौदह बार क्या चौदह हजार बार भी स्थूल शरीर को बचाये रखा जाये तो भी परम शांति के बिना यह बेकार है। **लाब्ध्वा ज्ञानं परां शांतिं....!** आत्मज्ञान से ही परम शांति मिलती है। इसी कारण चाँगदेव को फकीरी मौत सीखने के लिए ज्ञानेश्वर महाराज के पास आना पड़ा था। 1400 वर्ष का शिष्य और 22 वर्ष के गुरु। यही ज्ञान का आदर करने वाली भारतीय संस्कृति है। ज्ञान से उम्र को कोई सम्बन्ध नहीं है।

हम तो जीवन में पग-पग पर छोटी-मोटी परिस्थितियों से घबरा उठते हैं। ऐसा भयभीत जीवन भी कोई जीवन है? यह तो मौत से भी बदतर है। इसीलिए कहता हूँ कि असली जीवन जीना हो, निर्भय जीवन जीना हो तो फकीरी मौत को एक बार जान लो।

फकीरी मौत अर्थात् अपने अमरत्व को जान लेना। फकीरी मौत अर्थात् उस पद पर आरूढ़ हो जाना जहाँ से जीवन भी देखा जा सके और मौत भी देखी जा सके। जहाँ से स्पष्ट रूप से दिखे कि सुख-दुःख आये और गये, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आई और गई, परन्तु ये सब शरीर से ही सम्बन्धित थे, मुझे तो वे स्पर्श तक नहीं कर सके। मैं तो असंग हूँ अमर हूँ। मेरा तो जन्म भी नहीं मृत्यु भी नहीं।

सुकरात का अनुभव

सुकरात को जब जहर दिया जाने लगा तो उसके शिष्य रोने लगे। क्योंकि उनको यह अज्ञान था कि सुकरात अब बचेंगे नहीं, मर जायेंगे। सुकरात ने कहाः

"अरे तुम रोते क्यों हो? अब तक मैंने जीवन देखा, अब मौत को देखूँगा। यदि मैं मर जाऊँगा तो आज नहीं तो कल मरने ही वाला था, इसलिए रोने की क्या जरूरत है? और यदि मरते हुए भी नहीं मरा, केवल शरीर से ही छिन्न-भिन्न हुआ तो भी रोने की क्या जरूरत?"

सुकरात ने बिना हिचकिचाहट के, राजी-खुशी से जहर का प्याला पी लिया और शिष्यों से कहाः

"देखो, यह रोने का समय नहीं है। बहुत ही महत्वपूर्ण बात समझने का समय आया है। मेरे शरीर पर जहर का प्रभाव होने लगा है। पैर सुन्न होते जा रहे हैं..... घुटनों तक जड़ता व्याप्त हो गई है.... जहर का असर बढ़ता जा रहा है..... मेरे पैर हैं कि नहीं इसकी अनुभूति नहीं हो रही है.... अब कमर तक का भाग संवेदनहीन बन गया है।"

इस प्रकार सुकरात का सारा शरीर ठंडा होने लगा। सुकरात ने कहाः

"अब जहर के प्रभाव से हाथ, पैर, छाती जड़ हो गई है। थोड़ी ही देर में मेरी जिह्वा भी निस्पंद हो जायेगी। उससे पहले एक महत्वपूर्ण बात सुन लो। जीवन में जिसको नहीं जान सका उसका अनुभव हो रहा है। शरीर के सब अंग एक के एक बाद एक निस्पंद होते जा रहे हैं, परन्तु उससे मुझमें कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। मैं इतना ही पूर्ण हूँ जितना पहले था। शरीर से मैं स्वयं को अलग असंग महसूस कर रहा हूँ। अब तक जैसे जीवन को देखा वैसे ही अभी मौत को भी देख रहा हूँ। यह मौत मेरी नहीं बल्कि शरीर की है।"

अनुक्रम

आध्यात्मविद्याः भारत की विशेषताः

सुकरात तो शरीर छोड़ते-छोड़ते अपना अनुभव लोगों को बताते गये कि शरीर की मृत्यु यह तुम्हारी मृत्यु नहीं, शरीर के जाते हुए भी तुम इतने के इतने ही पूर्ण हो, परन्तु भारत के ऋषि तो आदि काल से कहते आये हैं-

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा।
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

'हे अमृतपुत्रों ! सुनो। उस महान परम पुरुषोत्तम को मैं जानता हूँ। वह अविद्यारूप अंधकार से सर्वथा अतीत है। वह सूर्य की तरह स्वयंप्रकाश-स्वरूप है। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में, जन्म-मृत्यु के बंधनों से सदैव के लिए छूटने में समर्थ होता है। परम पद की प्राप्ति के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।'

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

यह कोई वेद-उपनिषद् काल की बात है, उस समय के ऋषि चले गये और अब नहीं हैं.... ऐसी बात नहीं है। आज भी ऐसे ऋषि और ऐसे संत हैं जिन्होंने सत्य की अनुभूति की है। अपने अमरत्व का अनुभव किया है। इतना ही नहीं बल्कि दूसरों को भी इस अनुभव में उतार सकते हैं। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि रमण इत्यादि ऐसे ही तत्त्ववेत्ता महापुरुष थे। और आज भी ऐसे महापुरुष जंगलों में और समाज के बीच में भी हैं। यहाँ इस स्थान पर भी हो सकते हैं। परन्तु उनको देखने की आँख चाहिए। इन चर्मचक्षुओं से उन्हें पहचानना मुश्किल है। फिर भी जिज्ञासु और मुमुक्षु वृत्ति के लोग उनकी कृपा से उनके बारे में थोड़ा संकेत यह इशारा पा सकते हैं।

अनुक्रम

तीन प्रकार के लोगः

ऐसे संतों के पास तीन प्रकार के लोग आते हैं- दर्शक, विद्यार्थी और साधक।

दर्शक अर्थात् ऐसे लोग जो केवल दर्शन करने और यह देखने के लिए आते हैं कि संत कैसे हैं, क्या करते हैं, क्या कहते हैं। उपदेश भी सुन तो लेते हैं पर उसके अनुसार कुछ करना है इसके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। आगे बढ़ने के लिए उनमें कोई उत्साह नहीं होता।

विद्यार्थी अर्थात् वे जो शास्त्र एवं उपदेश सम्बन्धी अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए आते हैं। अपने पास जो जानकारी है उसमें और वृद्धि होवे ताकि दूसरों को यह सब सुनाकर अपनी विद्वत्ता की छाप उन पर छोड़ी जा सके। दूसरों से सुना, याद रखा और जाकर दूसरों को सुना दिया। जैसे 'गुड्स ट्रान्सपोर्ट कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड'- यहाँ का माल वहाँ और वहाँ का माल यहाँ, लाना और ले जाना। ऐसे लोग भी तत्त्व समझने के मार्ग पर चलने का परिश्रम उठाने को तैयार नहीं।

तीसरे प्रकार के लोग होते हैं साधक। ये ऐसे लोग होते हैं कि जो साधनामार्ग पर चलने को तैयार होते हैं। इनको जैसा बताया है वैसा करने को पूर्णरूप से कटिबद्ध होते हैं। अपनी सारी शक्ति उसमें लगाने को तत्पर होते हैं। उसके लिए अपना मान-सम्मान, तन-मन-धन, सब कुछ होम देने को तैयार होते हैं। संत के प्रति और अपने ध्येय के प्रति इनमें पूर्ण निष्ठा होती है। ये लोग फकीर अथवा संत के संकेत के अनुसार लक्ष्य की सिद्धि के लिए साहसपूर्वक चल पड़ते हैं।

विद्यार्थी अपने व्यक्तित्व का श्रृंगार करने के लिए आते हैं जबकि साधक व्यक्तित्व का विसर्जन करने के लिए आते हैं। साधक अपने लक्ष्य की तुलना में अपने व्यक्तित्व या अपने अहं का कोई भी मूल्य नहीं समझते। जबकि विद्यार्थी के लिए अपना अहं और व्यक्तित्व का श्रृंगार ही सब कुछ है। अपनी विद्वता में वृद्धि, जानकारी को बढ़ाना, व्यक्तित्व को और आकर्षक बनाना इसी में उसे सार दिखता है। तत्त्वानुभूति की तरफ उसका कोई ध्यान नहीं होता।

यही कारण है कि संतों के पास आते तो बहुत लोग हैं, परन्तु साधक बनकर वहीं टिक कर तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले कुछ विरले ही होते हैं।

ज्ञान को आयु से कोई निस्बत नहीं

जिसने फकीरी मौत को जान लिया हो अर्थात् जिसे आत्मज्ञान हो गया हो वह शरीर की दृष्टि से कम उम्र का हो, परन्तु उसके आगे लौकिक विद्या में प्रवीण और अधिक वय के, सफेद दाढ़ी-मूँछ वाले लोग भी बालक के समान होते हैं। इसीलिए योगविद्या में प्रवीण 1400 वर्ष के चाँगदेव को कम उम्रवाले ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में समर्पित होना पड़ा था। प्राचीन काल में ऐसे कई उदाहरण देखने में आते हैं।

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्नसंशयाः ।।

अर्थात् यह कैसा वैचित्र्य है कि वटवृक्ष के नीचे युवा गुरु और वृद्ध शिष्य बैठे हैं ! गुरु द्वारा मौन व्याख्यान हो रहा है और शिष्यों के सब संशयों और शंकाओं का समाधान होता जा रहा है।

अनुक्रम

योगसामर्थ्यः एक प्रत्यक्ष उदाहरण

अपने मोटेरा आश्रम में भी ऐसे ही करीब सत्तर वर्ष के सफेद बाल वाले एक साधक हैं। पहले डीसा में वे एक संत के पास गये। गये तो थे दर्शक बनकर ही, परन्तु संत की दृष्टि पड़ते ही वे दर्शक में से साधक बन गये। मैं कुछ वर्ष पूर्व डीसा के आश्रम में था तब वे मेरे पास आये थे। पकी हुई उम्र में भी वे 18 वर्ष की उम्र की एक बाला के साथ ब्याह रचाने की तैयारी में थे और आशीर्वाद माँगने हेतु वहाँ आये थे। उनको देखकर ही मेरे मुँह से निकल पड़ाः

"अब तुम्हारी शादी ईश्वर के साथ कराएँगे।"

यह सुनकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि न तो वे मुझे पहले से जानते थे और न ही मैं उन्हें जानता था। उस वक्त उनका शरीर भी कैसा था ! चरबी और कफ-पित्त से ठसाठस भरा हुआ.... एकदम स्थूल... दमा आदि रोगों का शिकार। डीसा में कपड़े के बड़े व्यापारी थे। धूप में बिना छाता लिए दुकान से नीचे नहीं उतर पाते थे। प्रकृति ऐसी थी कि किसी भी संत महात्मा को नहीं गाँठे और काम-वासना भीतर इतनी भरी हुई थी कि आगे की दो पत्नियाँ शरीर छोड़ चुकीं थीं फिर भी इस उम्र में तीसरी शादी करने को तैयार थे। पत्नी बिना एक दिन भी नहीं रह सकते थे।

घर पहुँचने पर उनको पता चला कि उनके अन्दर जो काम-विकार का तूफान आया था वह एकदम शांत हो गया है। भविष्य में पत्नी बनने वाली उस कुमारी के साथ एकांत में अनेक चेष्टाएँ करके भी वे उस काम-विकार को पुनः नहीं जगा सके। इतना प्रबल विकार एकाएक कहाँ चला गया ! फिर उनको समझ में आया कि संत की ईश्वरीय अहेतु की कृपा उनमें उतरी है। उनको सारा संसार सूना-सूना लगने लगा। उन्होंने तुरन्त ही उस कुमारी युवती को कुछ रूपये और कपड़े दिये और बेटी कहकर रवाना कर दिया। उसके बाद उन्होंने आसन, प्राणायाम, गजकरणी, नेति, धोति आदि क्रियाएँ सीख ली और नियमित रूप से करने लगे। इससे उनके शरीर के सारे पुराने कफ-पित्त-दमा आदि दूर हो गये और शरीर में से आवश्यकता से अधिक चर्बी घटकर शरीर हल्का फूल जैसा हो गया। अब तो जवानों के साथ दौड़ने की भी स्पर्धा करते

हैं। ध्यानयोग की साधना में उन्होंने इतनी प्रगति की है कि उनको कई प्रकार के अलौकिक अनुभव हुआ करते हैं। अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा वे लोक-लोकान्तर में घूम आया करते हैं।

योग भी साधना का आखिरी शिखर नहीं

यह भी साधना की कोई आखिरी भूमिका नहीं है। सर्वोच्च शिखर नहीं है। यह भी सब माया की सीमा में ही है। फिर चर्म-चक्षुओं से देखो अथवा ध्यान में बैठकर देखो, क्योंकिः

यद् दृश्यं तद् अनित्यम्।

जो दिखता है वह अनित्य है। 'जो दिखे सो चालनहार।' चाँगदेव भी योग में कुशल थे। काल को कई बार धोखा दे चुके थे परन्तु माया को धोखा न दे सके। वे भी सात्त्विक माया में थे। माया से परे नहीं थे।

माया ऐसी ठगिनी ठगत फिरत सब देश ।
जो ठगे या ठगिनी ठगे वा ठग को आदेश ।।

कोई विरले संत ही इस माया को ठग सकते हैं, माया से पार जा सकते हैं। बाकी के लोगों का तो यह माया नश्वर में ही शाश्वत् का आभास करा देती है, अस्थिरता में स्थिरता दिखा देती हैं। ऐसी मोहिना माया के विषय में श्री कृष्ण कहते हैं-

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।

'मेरी यह अदभुत त्रिगुणमयी माया का तरना अत्यन्त दुष्कर है, परन्तु जो मेरी शरण में आते हैं वे तर जाते हैं।'

(गीता)

अनुक्रम

गुणातीत संत ही परम निर्भयः

ऐसी दुस्तर माया को जो संत अथवा फकीर तर जाते हैं और मौत की पोल जान जाते हैं, वे कहते हैं- "एक ऐसी जगह है जहाँ मौत की पहुँच नहीं, जहाँ मौत का कोई भय नहीं, जिससे मौत भी भयभीत होती है उस जगह में हम बैठे है। तुम चाहो तो तुम भी बैठ सकते हो।"

तुम्हारे में एक ऐसा चेतन है जो कभी मरता नहीं, जिसने मौत कभी देखी ही नहीं, जो जीवन और मौत के समय परिवर्तन को देखता है, परन्तु उन सबसे परे है।

यदि घड़े में आया हुआ चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब घड़े के पानी को उबलता हुआ जानकर यह माने की मैं उबल रहा हूँ, पानी हिले तो समझे कि मैं हिलता हूँ, घड़ा फूट गया तो समझे कि मैं मर गया तो यह उसका अज्ञान है। परन्तु उसको यह पता चल जाये कि पानी के उबलने से मैं नहीं उबलता, पानी के हिलने से मैं नहीं हिलता, मैं तो वह चन्द्रमा हूँ जो हजारों घड़ों में चमक रहा हूँ, कितने ही घड़े टूट-फूट गये परन्तु मैं मरा नहीं, मेरा कुछ भी बिगड़ा नहीं। मैं इन सबसे असंग हूँ..... तो वह कभी दुःखी नहीं होगा।

इसी प्रकार हम यदि अपने असंगपने को जान लें अर्थात् "मैं शरीर-मन-बुद्धि नहीं, अपितु आत्मा हूँ"- यह हम जान लें तो फिर कितने ही देहरूपी घड़े बनें और टूटें-बिखरें, कितनी ही सृष्टियाँ बनें और उनका प्रलय हो जाय, हमको कोई भय नहीं होगा, क्योंकि आत्मा का स्वभाव हैः

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

'यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है। क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।'

(भगवदगीताः 2.23)

अनुक्रम

संतों का सन्देशः

जिन संतों ने यह रहस्य जान लिया है, जो इस अमृतमय अनुभव में से गुजर चुके है, वे सब भयों से मुक्त हो गये हैं। इसीलिए वे अपनी अनुभवसिद्ध वाणी में कहते हैं-

"अपने आत्मदेव से अपरिचित होने के कारण ही तुम अपने को दीन-हीन और दुःखी मानते हो। इसलिए अपनी आत्म-महिमा में जाग जाओ। यदि अपने आपको दीन ही मानते रहे तो रोते रहोगे। ऐसा कौन है जो तुम्हें दुःखी कर सके? तुम यदि न चाहो तो दुःख की क्या मजाल है कि तुम्हें स्पर्श भी कर सके ! अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड को जो चल रहा है वह चेतन तुम्हारे भीतर चमक रहा है। उसकी अनुभूति कर लो। वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है।"

मन्सूर को सूली पर चढ़ा दिया गया था। परन्तु उनको सूली का कोई भय नहीं था। सूली का कष्ट उनको स्पर्श भी नहीं कर सका, क्योंकि मन्सूर अपनी महिमा में जगे हुए थे। वे यह जान चुके थे कि मैं शरीर नहीं हूँ। सूली शरीर को लग सकती है, मुझे नहीं। इसलिए वे हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गये थे।

हम ही जानबूझकर अपनी प्रसन्नता की, अपने सुख-दुःख की चाबी दूसरों के हाथों में सौंप देते हैं। कोई थोड़ा हँस देता है तो हम क्रोधित हो उठते हैं। कोई थोड़ी प्रशंसा कर देता है तो हर्ष से फूल उठते हैं क्योंकि हम अपने को सीमित परिच्छिन्न शरीर या मन ही मान बैठे हैं।

हम अपने वास्तविक स्वरूप, अपनी असीम महिमा को नहीं जानते। नहीं तो मजाल है कि जगत के सारे लोग और तैंतीस करोड़ देवता भी मिलकर हमें दुःखी करना चाहे और हम दुःखी हो जायें ! जब हम ही भीतर से सुख अथवा दुःख को स्वीकृति देते हैं तभी सुख अथवा दुःख हमको प्रभावित करता है। सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरी भक्ति है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि कोई यदि तुम्हारी प्रसन्नता छीनकर उसके बदले में तुमको स्वर्ग का फरिश्ता भी बनाना चाहे तो फरिश्तापद को ठोकर मार दो मगर अपनी प्रसन्नता मत बेचो।

हम इस जीवन और मृत्यु का कई बार अनुभव कर चुके हैं। संत कहते हैं-

"तुम्हारा न तो जीवन है और न ही मृत्यु है। तुम जीव नहीं, तुम शिव हो। तुम अमर हो। तुम अनन्त अनादि सच्चिदानन्द परमात्मा हो। यदि इस जन्म-मरण के खेल से थक चुके हो, इनके खोखले पन को जान चुके हो, इसके असारपने से परिचित हो चुके हो तो किसी संत के सान्निध्य का लाभ उठाकर फकीरी मौत को जान लो। फिर तुम्हें कोई दुःख, कोई मृत्यु भयभीत नहीं कर सकेगी। फिर जिसे आना हो वह आवे, जाना हो वह चला जावे, सुख आवे तो आने दो, दुःख आवे तो आने तो। जो आयेगा वह जायेगा। तुम दृष्टा बनकर देखते रहो। तुम अपनी महिमा में मस्त रहो।"

मौत से भी मौत का भय बदतर है। भय में से ही सारे पाप पैदा होते हैं। भय ही मृत्यु है।

लोग पूछते हैं- "स्वामी जी ! आत्म-साक्षात्कार हो जाता है फिर उसके बाद क्या होता है?" होता क्या है? हम अपने स्वरूप में जाग जाते हैं। उसके बाद हमसे जो भी प्रवृत्ति होती है वह आनन्दमय ही होती है। संसार की कोई भी दुःखपूर्ण घटना हमको दुःखी नहीं कर सकती।

फिर यह शरीर रहे या न रहे, हमारे आनन्द में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उस आनन्दस्वरूप अपने आत्मदेव को जानना-यही जीवन का परम कर्तव्य है। परन्तु इस परम कर्तव्य की ओर मनुष्य का ध्यान जाता नहीं और छोटी-मोटी तुच्छ प्रवृत्तियों में ही अटका रह जाता है।

हम कहीं यात्रा में निकलते हैं तो रास्ते के लिए टिफिन भरकर भोजन साथ ले लेते हैं। भोजन से भी अधिक महत्व पानी का है, परन्तु उसके लिए सोच लेते हैं कि चलो, स्टेशन पर भर लेंगे। घर से पानी लेकर चलने की चिन्ता नहीं करते। पानी से भी ज्यादा जरूरी हवा है। उसके बिना तो एक मिनट भी नहीं चलता, फिर भी हवा का कोई सिलेन्डर भरकर साथ नहीं लेते, क्योंकि हम सब जानते हैं कि वह तो सर्वत्र है। इसलिए हवा के लिए हम कोई चिन्ता नहीं करते।

हवा से कम जरूरी पानी के लिए पानी से कम जरूरी भोजन के लिए हम ज्यादा चिन्ता करते हैं। उसी प्रकार अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में जागने के परम कर्तव्य को छोड़कर कम महत्व के स्थूल शरीर के लालन पालन एवं उससे संबंधित व्यवहार को सँभालन में ही हम लगे रहते हैं। शरीर असत्, जड़ और दुःखरूप है। उसको चलाने वाला सूक्ष्म भूतों से निर्मित सूक्ष्म शरीर है। उसको भी चेतन सत्ता देने वाला सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा है। इस आनन्द-स्वरूप आत्मा को असत्-जड़, दुःखरूप और मरणधर्मा समझकर जीवनभर मौत के भय से भयभीत बने रहते हैं।

अनंत परमात्मा में न तो उत्थान है न पतन, न जन्म है न मरण। वहाँ तो सब एकरस है। हम ही मोहवश अपना संसार खड़ा कर लेते हैं और एक दूसरे के साथ संबंध बनाकर अपने को जानबूझकर बंधन में डाल देते हैं।

एक संत के पास एक सज्जन का पत्र आया। उसमें लिखा थाः "स्वामी जी ! आपके आशीर्वाद से हमारे यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है।" संत ने उत्तर में उसे लिखा किः "तुम झूठ बोलते हो।" फिर जब सज्जन संत के पास गया तब कहा किः "स्वामी जी ! मैं सच कहता हूँ। मेरे यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है।" इस पर संत ने फिर से कहा किः "तुम झूठ बोलते हो।" यह सुनकर उन सज्जन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विस्फारित नेत्रों से संत की ओर देखने लगा। तब संत ने कहाः

"पुत्र का जन्म नहीं हुआ, पिता का जन्म हुआ है, माता का जन्म हुआ है, काका-मामा का जन्म हुआ है। पुत्र को तो खबर ही नहीं है कि मेरा जन्म हुआ है और मैं किसी का पुत्र भी हूँ। परन्तु हम उस पर सारे सम्बन्ध आरोपित कर देते हैं।

वस्तुतः पंचभूतों में कोई आकार बना है उसे पुत्र का नाम दे दिया। समय आने पर यह आकार बिखर जायेगा। यह आकार बने उसमें हर्ष और यह आकार बिखर जाये उसमें शोक कैसा? भय कैसा?

जिस शरीर को हम "मैं" मानते हैं, उसकी प्रकृति तो देखो ! पिया तो था अमृत जैसा मीठा जल और निकाला मूत्र रूप में गंदा पानी। खाये तो थे मोहनथाल, दूधपाक, छप्पन भोग पर बन गया सब विष्टा रूप। शरीर का संग करने पदार्थ की ऐसी अवस्था बन जाती है। सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा भी अपने को भूलकर शरीर के साथ एक होकर स्वयं को 'मैं शरीर' मान लेती हैं और दीन हीन एवं दुःखी बन जाती है। परन्तु जब वह अपने आपमें जाग जाती है तब अपने को देवों का देव अनुभव करती है।

यदि हमने शरीर के साथ अहंबुद्धि की तो हम में भय व्याप्त हो ही जायगा, क्योंकि शरीर की मृत्यु निश्चित है। उसका परिवर्तन अवश्यंभावी है। उसको तो स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं रोक सकते। परन्तु यदि हमने अपने आत्मस्वरूप को जान लिया, स्वरूप में हमारी निष्ठा हो गई तो हम निर्भय हो गये, क्योंकि स्वरूप की मृत्यु होती नहीं। मौत भी उससे डरती है।

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती एक बार रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा कर रहे थे। वे यह जानना चाहते थे कि तीसरे दर्जे में लोगों द्वारा किये जाने वाले मान-अपमान का प्रभाव उनके दिल पर होता है कि नहीं। आत्मनिरीक्षण से उन्हें पता चला कि प्रभाव तो होता है। यह बात उन्होंने श्री उड़िया बाबा को बतायी। उड़िया बाबा ने कहाः

"तुम बैठते ही कचरे के ढेर पर हो आशा करते हो कि मुझ पर कोई कचरा न फेंके, मुझे कचरे की दुर्गन्ध न आवे..... यह कैसे हो सकता है? तुम बैठते हो शरीर में और आशा रखते हो कि मान-अपमान का असर न हो.....। स्वयं को शरीर माना तो मान-अपमान, सुख-दुःख होगा और जन्म-मृत्यु भी होगी।"

वेदान्त के रहस्य को समझना यह कोई स्त्रियों का काम नहीं है। स्त्री अर्थात् प्रकृति के शरीर के 'मैं' मानकर जीनेवाला।

एक बार राजा जनक विद्वानों की सभा में बैठे थे। उस सभा में गार्गी आई। वह बिल्कुल दिगम्बर (नग्न) थी। ऐसी अवस्था में सभा में गार्गी का प्रवेश पंडितों को रुचा नहीं, इसलिए उन्होंने नाक-भौं सिकोड़ लिया। पुरुषों से भरी सभा में एक नग्न स्त्री !

गार्गी बोलीः "ऐ पंडितो ! नाक भौं क्यों सिकोड़ते हो?"

पंडितों ने कहाः "तुम एक अबला..... ऐसी अवस्था में पुरुषों की सभा में जो आई हो !"

गार्गी तुरन्त बोलीः "कौन कहता है कि मैं अबला हूँ? मैं सबला हूँ। अबला तो तुम हो जो अपना रक्षक बाहर ढूँढते हो। मैं अपना रक्षक आप हूँ। मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं तो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ। मैं अपने आपको जानती हूँ।"

जिसको जानकर गार्गी निर्भय बन गई थी उस आनन्दस्वरूप अपने आत्मदेव को जो जान लेता है, उसी में स्थित हो जाता है, वह जीवन और मौत दोनों से परे, दोनों का दृष्टा बन जाता है। उसे फिर कोई भय नहीं रहता। वह सदैव आनन्द में मस्त रहता है।

मरो मरो सब कोई कहे मरना न जाने कोई ।
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होई ।।

मंगलमय जीवन, मंगलमय विवाह, मंगलमय संबंध उस परम मंगल चैतन्य के कारण ही हो सकते हैं, न कि शूद्र शरीर के बाह्य रूप-रंग पर विमोहित होने से।

महाराज जी के पास आकर एक महिला कहने लगीः "मेरे पति स्वर्गस्थ हो गये हैं। उनका वियोग सहा नहीं जाता। ऐसा कोई उपाय बताओ कि उनका हित हो और मुझे शांति मिले।"

दूसरा एक व्यक्ति आया और बोलाः "मेरी पत्नी मुझे अकेला छोड़कर चल बसी है।"

तीसरे ने कहाः "मेरा बेटा स्वर्गस्थ हो गया है। उसकी मीठी याद आती है। मेरे मन में आता है कि उसके पीछे मैं भी आत्महत्या करके मर जाऊँ। बाबा जी ! शान्ति का कुछ उपाय बताइये।"

महाराज जी ने कहाः "हे भद्र महिला ! पति की याद आये तो उन्हे खूब आदरपूर्वक कहोः "मरणधर्मा शरीर में होते हुए भी आप अमर थे। शरीर के मरने पर भी आप नहीं मरे। देह नश्वर है। आप शाश्वत हो। चैतन्य हो। आप परमेश्वर का अविनाशी अंश हो। जन्म-मृत्यु आपका धर्म नहीं है। पाप-पुण्य आपका कर्म नहीं है। आप अजर हो, शुद्ध बुद्ध हो। हम परस्पर पार्थिव शरीर की प्रीति करके मोह में सड़ रहे थे.... विकारों में दब रहे थे। अब पार्थिव शरीर की प्रीति से मुक्त होकर अपार्थिव आत्मा में स्थित हो जाओ।'

वह शादी बरबादी में बदल जाती है जिसमें एक दूसरे के शरीर को प्यार करते हैं। वह मंगलमय शादी आबादी की ओर ले जाती है जहाँ पत्नी पति को, पति पत्नी को, पुत्र पिता को, पिता पुत्र को शरीर के रूप में नहीं अपितु शरीरों के आधार शुद्ध चैतन्यस्वरूप में देखे.... परस्पर अपने चैतन्यस्वरूप की याद दिलावें और प्रेरणा दें।

हे भद्र महिला ! अपने पति को याद करके उनके जीवात्मा को यह प्रेरणा दो। इससे उनकी भी उन्नति होगी और तुम्हारी उन्नति होगी।"

ऐसा चिन्तन करो कि: 'हे चैतन्यस्वरूप मेरे आत्मन ! शरीर को.... पाँच भूत के पुतले को त्यागने के बाद भी आपका अस्तित्व है। आप आत्मा हो..... परमेश्वर हो..... अमर हो.... चैतन्य हो.... शाश्वत हो।'

इसी प्रकार अपनी पत्नी को और स्वर्गस्थ पुत्र परिवार को स्मरण करके उनको उन्नत करो और आप भी उन्नत बनो। जीते-जी भी परस्पर इसी भाव से उन्नत करो। मृत्यु मंगलमय हो जाये ऐसा वातावरण बनाओ।

जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं उनके श्राद्धों के दिनों में तथा स्मरण के वक्त उन्हें सुझाव दो कि:

'जन्म-मृत्यु तुम्हारा धर्म नहीं था। पाप-पुण्य तुम्हारा कर्म नहीं था। तुम अजर, अविनाशी, निर्लेप, शाश्वत, सनातन नारायण के अंश हो। अतः अपने परमेश्वर स्वभाव को सँभालो.... स्मरण करो।'

अपने पति, पत्नी, पुत्र का नाम लेकर कहो कि: 'तुम वही हो.... सचमुच में वही हो जो मरने के बाद भी नहीं मरता। ॐ.....ॐ......ॐ.....! तुम चैतन्य आत्मा हो। ॐ....ॐ....ॐ....! शाश्वत परमेश्वर हो। ॐ.....ॐ.....ॐ.....! अविनाशी परमात्मा हो। ॐ....ॐ....ॐ....!'

पृथ्वी पर के स्वप्न तुल्य संबंधों का स्मरण करके तुम नीचे न गिरो अपितु आत्मा-परमात्मा के संबंध को याद करते हुए अपना ऐहिक जीवन मंगलमय बनाओ। संसार से कूच करके जाओ उस समय तुम्हारे कुटुम्बी आत्मा परमात्मा की एकता और अमरता, तुम्हारी नित्यता और मुक्तता का स्मरण तुम्हें अंत समय में करा दें ऐसी व्यवस्था करो।

कोई चल बसने वाले हो या चल बसे हों, उनको याद करके उनकी ओर दिव्य विचार, अमर आत्मा का सन्देश भेजो। इस प्रकार तुम उत्तम सेवा कर सकते हो और जीवितों को जीवनदाता में जगा सकते हो। दोनों इस प्रकार परस्पर सहायता करोगे और पाओगे।

टेलिफोन पर अपने दूर के संबंधी से हम जब बात करते हैं तो उस यंत्र में से आने वाली ध्वनि अपने संबंधी की होती है। ऐसे ही शरीर रूपी यंत्रों से जो कुछ स्नेह, सांत्वना, सहानुभूति, प्रेम या प्रकाश हम पाते हैं वह भीतर वाले परमेश्वर का ही होता है। उनको या उनके चित्रों को

देखो तो उन चित्रों के पीछे खड़े उस शाश्वत सत्य को, परम मित्र को प्यार करो और उन्हें भी याद दिलाओ किः 'हे शाश्वत आत्मा ! हे पुरातन ! हे अविनाशी ! नाशवान संसार और शरीर बदलते हैं लेकिन तुम अबदल आत्मा हो। ॐ.....ॐ......ॐ.....

बचपन बदल गया... यौवन बदल गया... बुढ़ापा बदल गया.... शरीर बदल गया.... फिर तुम भी हो। तुम वह अमर आत्मा हो जिस पर काल का भी कोई प्रभाव नहीं चलता।

हे अकाल आत्मा ! अपनी महिमा में जागो।'

इस प्रकार के विचार भेजने से मगंल करोगे और मंगल को पाओगे। जीवन मंगलमय होने लगेगा। मृतकों की मृत्यु भी मंगलमय हो जायगी।

मंगल भवन अमंगलहारी विचारों को सदैव एक दूसरे के प्रति प्रसारित करो। ॐ आनन्द... आनन्द... आनन्द....!

रोते, चीखते, मोहमाया में पड़कर उनको याद करते हो तो उनका और अपना सत्यानाश करते हो, उनको नीचे गिराते हो। उनकी आत्मा को भटकाते हो, अपने को तुच्छ बनाते हो। अमांगलिक विचारों को कतई स्फुरित न होने दो। सदैव मंगलमय विचार। हो जायेगा मंगलमय जीवन। मृत्यु भी मंगलमय हो जायेगी। ॐ...! ॐ...!! ॐ...!!!

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीवन और मृत्यु आत्मा-परमात्मा को पाने के दो पहलू है। रात के बाद दिन, दिन के बाद रात होती है इसी तरह जीवन और मृत्यु चोले बदलते हुए.... अनुभवों से गुजरते हुए अपने आत्मस्वरूप को, ब्रह्मस्वरूप को पाने के लिए मंगलमयी अवस्था है।

दिन जितना प्यारा है, रात भी उतनी ही आवश्यक है। जीवन जितना प्यारा है, मृत्यु भी उतनी ही आवश्यक है। मृत्यु माने आत्मशिव के मन्दिर में जाने के लिए ऊँची सीढ़ियाँ। मृत्यु माने माँ की गोद में बालक सो गया और उष्मा, शक्ति, ताजगी, स्फूर्ति पाकर फिर सुबह खेलता है। मृत्यु माने माँ की गोद में थकान मिटाने को जाना। फिर नया तन प्राप्त करके अपनी मंगलमय यात्रा करना।

तत्त्वदृष्टि से देखा जाये तो यह जीवन-मृत्यु की यात्रा प्रकृति में हो रही है तुम्हें परमात्मास्वरूप में जगाने के लिए।

गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

'तत्त्वतः यह आत्मा न कभी जन्मता है और न मरता है। न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है। यह जन्मरहित, नित्य निरन्तर रहने वाला, शाश्वत और पुरातन अनादि है। शरीर के मारे जाने पर भी वह नहीं मारा जाता।'

(गीताः 2.20)

शव की स्मशानयात्रा में मटका ले जाते हैं, फोड़ देते हैं यह याद दिलाने के लिए कि देह मानो मटका है। इस मंगलमय मृत्यु को पीछे विह्वल होने की आवश्यकता नहीं है। यह मटका सेवा करने के लिए मिला था... जीर्ण-शीर्ण हुआ.... टूट गया.... फिर नया मिलेगा। मंगलमय आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति तक यह मंगलमय जन्म-मरण की यात्रा तो चलती ही रहेगी। इसमें विह्वल होकर रोना-चीखना निरा मोह है। अगर इस मोह को पोसा जाय और किसी की मृत्यु न हो तो संसार महा नरक हो जायगा। माली अगर बगीचे में काट-छाँट न करे तो बगीचा बगीचा ही न रहेगा, अपित भयानकर जंगल हो जायेगा।

सृष्टा ने मृत्यु का मंगलमय विधान न बनाया होता तो आदमी में त्याग, सेवा, नम्रता के सदगुण ही नहीं खिलते। सब अमर होकर अड़ियल की तरह उलझे रहते।

रात्रि से अरुणोदय, अरुणोदय से फिर मंगलमयी रात्रि की अनिवार्य आवश्यकता है। विराट की यह प्रचण्ड क्रीड़ा तुम्हें अपने विराट स्वभाव में जगाने के लिए आवश्यक है।

मृत्यु माने महायात्रा, महाप्रस्थान, महानिद्रा। अतः जो मर गये हैं उनकी यात्रा मंगलमय हो, आत्मोन्नतिप्रद हो ऐसा चिन्तन करें न कि अपने मोह और अज्ञान के कारण उनको भी भटकाएँ और खुद भी परेशान हों।

कइयों की मृत्यु बाल्यकाल में या यौवन में हो जाती है। जैसे माँ ने बच्चे को कपड़े पहनाए और नहीं जँचे, उठा लिये। फिर नये वस्त्रों से सजाया-धजाया। अथवा यों कहो कि बच्चा खिलौनों में रम जाता है, खिलौने नहीं छोड़ना चाहता परन्तु मंगलमयी माँ उसे बलात् उठा लेती है, अपनी गोद में सुलाती है। अपनी उष्मा, सान्निध्य, विश्रान्ति से उसे हृष्टपुष्ट करके फिर नूतन प्रभात को उसे खेलने के लिए क्रीडांगन में भेज देती है। ऐसे ही जीवात्मा का क्रीडांगन संसार है अतः अनेक शरीर बदलते हुए अबदल की मंगलमय यात्रा करने के लिए जीवन और मृत्यु को मंगल विधान समझकर ईश्वर की हाँ में हाँ करते हुए अपनी यात्रा उन्नत करें।

ॐ...ॐ....ॐ....

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

चिंतन पराग

ईश्वर का बनाया हुआ द्वैत भले ही बना रहे। उसको मिथ्या समझ लेने मात्र से ब्रह्म का बोध हो सकता है। साधक का काम द्वैत को मिथ्या समझने से ही चलता है।

इच्छाओं की तृप्ति का उपाय एक ही है कि इच्छाएँ त्याग दी जाएँ। जिस विवेकी ने इस जगत को सपने या इन्द्रजाल के समान समझ लिया है, जिसे दृश्य नष्ट रूप में दिखने लगा है वह दोषदर्शी विवेकी भला बताओ, इसमें अनुराग कैसे करें?

ज्ञानी जागरण को सत्य समझना छोड़ देने पर फिर पहले की भाँति अनुरक्त नहीं होता। ज्ञानी प्रत्येक वस्तु को अपना आत्मा समझता है।

मुर्दे की कल्पना को बार-बार मन में लाना काम-वासना से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय बताया गया है। मुर्दे को पड़े हुए देखकर मन घबराने लगता है।

परिणाम की क्यों परवाह करते हो? अपनी तनख्वाह के बारे में कभी फिक्र मत करो। अज्ञानी लोग समझते हैं कि कार्य की सफलता में कार्य करने की अपेक्षा अधिक आनन्द है। इन अन्धों को यह मालूम ही नहीं है किसी परिणाम से उतना सुख नहीं मिलता जितना काम करने से मिलता है।

अपने विचारों को सदा वास्तविक आत्मा में रखो और परिस्थितियों की परवाह मत करो।

तब तक आपकी हानि नहीं हो सकती, जब तक कि आप स्वयं उसे नहीं बुलाते। तलवार तब तक नहीं काट सकती, जब तक आप यह न सोचें कि यह काटती है।

ऐ पूर्ण ब्रह्म ! तेरे लिए कोई कर्तव्य या कार्य शेष नहीं है। सारी प्रकृति साँस रोके तेरी सेवा के लिए खड़ी है। संसार तेरी पूजा करने का अवसर पाकर अपने को कृतकृत्य करना चाहता है। क्या तू प्रकृति की शक्तियों को अपने चरणों में झुकने का अवसर देगा?

अपने भीतर सत्य के प्रकाश को सदा चमकता रखो। भय और प्रलोभन का शैतान तुम्हारे पास नहीं फटकेगा।

बाहर की बातों में कुछ भी नहीं मान अपमान ।
अपना काम किये जा निशिदिन इसमें ही सम्मान ।।

दूसरे लोग तुम्हारी आलोचना, निंदा करते हों उन्हें रोकने की चेष्टा न करो। क्योंकि इन्हीं सब बातों के द्वारा तुममें सदगुणों की वृद्धि होगी। जब तक तुम्हारा हृदय इतना दृढ़ नहीं है कि तुम मूर्खों के बकने पर स्थिर और शांत बने रहो, अथवा तुममें इतनी सहनशीलता नहीं है कि अज्ञानी मूर्खों को क्षमा कर सको तब तक तुम अपने को कहीं ज्ञानी न समझ बैठना।

यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ तो सब चिन्ता और भयों से छूट हो जाओगे।

किसी भी आकस्मिक दुर्घटना से धैर्य न छोड़ो, क्योंकि घबराहट से शक्ति तथा बुद्धि का नाश होता है। किसी भी प्रकार की कठिनाइयों के आगे दुःखित न होकर गम्भीरतापूर्वक उनका सामना करो, तभी तुम निःसन्देह विजय प्राप्त करोगे। तुम कहीं भी हतोत्साहित होकर निराश न होओ।

ऐसी कौन-सी विपत्ति है जो मेरी प्रसन्नता को नष्ट कर सकती है? वह कौन-सा रंज है जो मेरे आनन्द में विघ्न डाल सकता है? मैं तो विश्व ब्रह्माण्ड का प्रभु हूँ।

मैं बुद्धि का प्रभु हूँ, दिमाग का मालिक हूँ और मन का शासक हूँ।
संसार मुझमें है, मैं संसार में नहीं आ सकता। विश्व मुझमें है, मैं विश्व में नहीं बँध सकता। सूर्य और नक्षत्र मुझमें उदय और अस्त होते हैं।

देह और दुनिया दोनों ईश्वर के भीतर हैं... वही ईश्वर मैं हूँ।
मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ। मेरा जन्म नहीं, मृत्यु नहीं। मैं अजर-अमर हूँ। मैं चिदानन्द आत्मस्वरूप हूँ।

मैं मिथ्या, तू मिथ्या, धर्म मिथ्या, कर्म मिथ्या और जगत मिथ्या। और... ऐसा प्रतीत होता है कि मैं सर्वस्व हूँ। मैं ही सर्वज्ञ, सर्वगत आत्मा हूँ। अपना साक्षी हूँ। कदापि उन नाम रूपों में फँसा नहीं हूँ।

मैं विशुद्ध हूँ। असंख्य ब्रह्माण्ड मुझमें पड़े हैं। मैं असंस्पर्श्य हूँ। मेरा स्वरूप निर्लिप्त है।
मुझे दुःख से कोई भय नहीं है। मुझे समय की जरा भी चिन्ता नहीं। आत्मानन्द वाले को भय और आशंका कैसी?

किसी भी डर को अपने पास मत फटकने दो।

लोग यदि तुम्हारे बुराई करते हैं तो तुम उन्हें आशीर्वाद दो। ऐसे स्थान पर जाओ जहाँ लोग तुमसे घृणा करें।

तुम तो मुक्त हो, पहले से ही मुक्त हो। सर्वदा कहोः मैं सदा आनन्दस्वरूप हूँ। मैं मुक्तस्वभाव हूँ। मैं अनन्त स्वरूप हूँ। मेरी आत्मा का आदि और अन्त नहीं है। सभी मेरे आत्मस्वरूप हैं।

प्रसन्नतापूर्वक अपमान सहन करने से और नम्रता धारण करने से अभिमान की निवृत्ति होती है।

किसी पवित्र स्थान पर जाओ तो वहाँ के अनुशासन का पालन करो। वहाँ चप्पलों की चटाक्-पटाक्, आभूषणों की खनखनाहट, भड़कीले वस्त्रों की फरफराहट आदि हमसे न हो इसका पूरा ध्यान रखो। कहीं भी किसी के भी चित्त को या शांत वातावरण को अशांत करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

अपने किसी भी दुःख या अशांति का कारण बाहर मत ढूँढो। बाहर की परिस्थितियों या व्यक्तियों को दोष मत दो। कारण अपने भीतर ढूँढो। निर्दोष भाव से ढूँढोगे तो कारण भीतर ही मिल जायेगा। उसे दूर करने की चेष्टा करो। शांतचित्त रहने का यही बहुमूल्य उपाय है।

जो आत्म-अनुशासित हैं, वे ही शासन कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए नाम-जप करें, ध्यान करें, किसी आत्मनिष्ठ संत का पावन सान्निध्य प्राप्त करें। सब तरह से निर्भय एवं प्रसन्न बनने का यह श्रेष्ठ साधन है।

विनम्र बनो, निरहंकारी बनो। अपने आपको बड़ा बताने की चेष्टा न करो। विनम्रता एवं निराभिमानता ही तुम्हें बड़ा बनायगी। विनम्रता मनुष्य का बहुत बड़ा भूषण है।

निर्मल दृष्टि रखो। किसी के दोष देखना यह बहुत बड़ा दुर्गुण है। छिद्रान्वेषी न बनो। दूसरों के दोष देखना पाप अर्जन करना है। गुणग्राही बनो।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम